

मानव अस्तित्व के अर्थ की दार्शनिक व्याख्या करने की एक सीमा है। वह मनुष्य को तत्त्वशास्त्रीय और व्यावहारिक ढांचों में एक साथ रख सकने में असमर्थ रहा है। वह यह नहीं मानता है कि राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में अभिव्यक्त होने वाले मनुष्य के वास्तविक जीवन में उसके अस्तित्व के तत्त्वशास्त्रीय पक्ष के लक्षण नहीं दिखाई देते हैं। हैडेगर ने अपनी रचनाओं में कई स्थान पर मनुष्य के तत्त्वशास्त्रीय पक्ष की व्याख्या की है और इस निर्णय पर पहुँचा है कि मनुष्य का सत् जिस सीमा तक परमसत् को व्यक्त करता है वही तक उसका अस्तित्व भी है। परमसत् के द्वारा ही उसे अपने अस्तित्व की अनुभूति होती है। 'लेटर आन ह्यूमनिज्म' में हैडेगर ने नैतिकता और आचारशास्त्र के प्रश्नों पर विचार किया है किन्तु जब वह मनुष्य के अर्थ की तात्त्विक व्याख्या करता है तो वह मनुष्य को किसी नैतिक ढांचे में जमा नहीं पाता है।

मनुष्य की तात्त्विक व्याख्या करने पर दो शब्दों पर विचार करना पड़ता है— 'मनुष्य' और 'है'। हैडेगर कहता है कि संज्ञा 'मनुष्य' की क्रिया 'है' से सम्बन्ध होने पर मनुष्य का तात्त्विक या सत् पक्ष प्रकट होता है। 'है' क्रिया 'मनुष्य' संज्ञा के आयाम निदिष्ट करती है और उससे मनुष्य के अतिरिक्त किसी और तथ्य की सूचना नहीं मिलती है। तात्पर्य यह है कि मनुष्य, मनुष्य-है। मनुष्य की राजनीतिक आर्थिक और सामाजिक क्रियायें उसके सत् से प्रयुक्त हैं। सत् की दृष्टि से उन्हें 'अन्य' कहा जा सकता है। मनुष्य का यह अन्य पक्ष ऐतिहासिक और विवरणात्मक है। इसमें मनुष्य के कार्य, रचनायें और प्राप्तियाँ आती हैं। इन्हें हम मनुष्य का सत् कदापि नहीं कह सकते। ये तो उसके विशेषण मात्र हैं। मनुष्य के जैसे कार्य-व्यापार होते हैं तदनुकूल उसके साथ विशेषण जोड़ दिए जाते हैं। ये विशेषण मनुष्य का ऐतिहासिक विवरण देते हैं, उसके सत् से उनका कोई प्रयोजन नहीं है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि परमसत् मनुष्य की व्याख्या करने वाले सभी विशेषणों से परे है। वह केवल मनुष्य के अस्तित्व का आधार है।

हैडेगर परमसत् की व्याख्या 'डासेन' से प्रारम्भ करता है। यहाँ डासेन का तात्पर्य 'मानव जीवन' है। मनुष्य के अतिरिक्त अन्य वस्तुयें डासेन नहीं हैं। वे वस्तुयें या तो प्रकृति प्रदत्त (बोरहेन्दन) या मनुष्य निमित्त (जूहेन्दन) हो सकती हैं। ये दोनों प्रकार की वस्तुयें डासेन से भिन्न हैं। डासेन सदा हमारा अपना डासेन होता है। इसकी व्यवहारणा सामान्य वस्तु की भाँति नहीं बन सकती है; मानव जीवन के अस्तित्व की अनुभूति हमें अपने आप में होती है। वह वैयक्तिक और अपने प्रकार की

एक ही होती है। इस डासेन में चयन होता है, निर्णय लिया जाता है तथा ग्रहण और त्याग होता है। ये सब बातें अन्य प्रकृति-प्रदत्त वस्तुओं में नहीं होती हैं।

वस्तुयें किसी विशेष जाति (genus) की होती हैं— जैसे मकान, वृक्ष। उनका अपना विशेष गुण होता है। उन गुणों से किसी वस्तु का सार निदिष्ट हो सकता है। इसके विपरीत डासेन में कोई विशेष गुण नहीं होते। केवल परमसत् के सम्भाव्य रूप होते हैं। अतः डासेन से मानव जीवन के परमसत् का संकेत मिलता है, वह मनुष्य के सार (essence) का छोटक नहीं है। डासेन से अन्य वस्तुओं की भिन्नता प्रकट करने के लिए हैडेगर कहता है कि 'अस्तित्व' पद का प्रयोग डासेन के साथ ही किया जा सकता है।

मानव डासेन को 'संसार-में-परमसत्' (Being-in-the-World) कह सकते हैं। मनुष्य के अस्तित्व का अन्तरतम सार परमसत् ही है। वह परमसत् संसार में प्रकट होने पर मानव अस्तित्व के रूप में व्यक्त होता है। किन्तु हैडेगर यह स्वीकार करने को तैयार नहीं है कि इससे डासेन को यथार्थ माना जा सकता है। हो सकता है कि उसका अस्तित्व न भी हो। 'संसार-में-परमसत्' पद एक भाव व्यक्त करता है। इसमें प्रयुक्त 'में' शब्द स्थान सूचक नहीं है। जैसे किसी वस्तु में कोई वस्तु बताई जाती है तो इसका संकेत स्थान की ओर होता है। डासेन का किसी वस्तु में होना भिन्न अर्थ रखता है। यदि यह कहा जाय कि मनुष्य अपने घर में है, या कार्यालय में है या किसी नदी के किनारे है तो इसका अर्थ होगा कि वह वहाँ रहता है, निवास करता है या ठहरता है। कमरे में कुर्सी का होना और मनुष्य का होना एक जैसा नहीं है। इस अंतर को समझ कर ही 'संसार में परमसत्' का भाव समझा जा सकता है।

संसार में मनुष्य का अस्तित्व अन्य वस्तुओं के अस्तित्व से भिन्न है क्योंकि मनुष्य का अन्य मनुष्यों और वस्तुओं से सक्रिय सम्बन्ध है। सक्रिय सम्बन्ध होने के कारण ही मनुष्य को उन सब का ज्ञान होता है। यदि मनुष्य का अस्तित्व अन्य वस्तुओं के समान होता तो वह ज्ञान कदापि प्राप्त न कर सकता। यदि मनुष्य संसार से तटस्थ हो जाता है, वह उससे सक्रिय सम्बन्ध नहीं रखता है तो उसे संसार का केवल ऊपरी रूप दिखाई देता है। वह उनका आन्तरिक अर्थ समझने में असमर्थ रहता है। मनुष्य और वस्तुओं के अस्तित्व में अन्तर अन्य प्रकार से भी व्यक्त किया जा सकता है। मनुष्य एक्सिस्ट (ex-sist) करता है और वस्तुयें इनसिस्ट (in-sist) करती हैं। स्पष्ट है कि मनुष्य का अस्तित्व मनुष्य को जिस प्रकार

बाह्योपेक्षित होता है। वह अतिक्रमण से अपने अस्तित्व का अर्थ ग्रहण करता है और वस्तुओं को भी जानता है। इसके विपरीत वस्तुएं स्व-केन्द्रित होती हैं। उनकी सम्पर्क अन्य वस्तुओं या व्यक्तियों से नहीं होता है।

मनुष्य के अस्तित्व का तत्त्वशास्त्रीय विश्लेषण करने पर हेडेगर को मनुष्य के अस्तित्व के अनेक रूप दिखाई देते हैं। उन्हें वह एन्डिस्टेंसिया (existentialia) कहता है। इसके तीन मुख्य रूप जीवन-स्थिति, उद्देश्य और वाणी हैं। मनुष्य के अस्तित्व का सबसे महत्वपूर्ण रूप उसकी जीवन-स्थिति का है। संसार में उसकी स्थिति क्या है और जीवन में उसने क्या स्थान प्राप्त किया है (Befindlichkeit)। दूसरे, मनुष्य को अपने अस्तित्व का उद्देश्य या लक्ष्य भी ज्ञात होता है। वह अपने अन्दर सत् की निहित शक्ति भी जानता है। उसके अस्तित्व का यह रूप वर्स्टैंडिन (Verstehen) कहलाता है। तीसरे, मनुष्य का एक स्वरूप उसकी वाणी भी है। मनुष्य बोलता, सुनता या चुप रहता है। उसके अस्तित्व के यह रूप वाणी (Rede) कहलाते हैं। मनुष्य के अस्तित्व के ये तीनों रूप क्रमशः कर्म, ज्ञान और वाणी कहे जा सकते हैं। इन तीनों के समवेत स्वरूप में मनुष्य अपने पूर्ण अस्तित्व को प्राप्त करता है।

मनुष्य के अस्तित्व के लिए संसार का महत्वपूर्ण स्थान है। हेडेगर संसार को सांसारिकता पर ध्यान देता है तो उसे उसमें कुछ ऐसी विशेषताएँ दिखाई देती हैं जिन पर पहले कभी विचार नहीं किया गया था। वह कहता है कि संसार का गुण विस्तार (space) है। संसार विस्तार में नहीं है बल्कि संसार में विस्तार है। 'संसार-में-परमसत्' के रूप में यदि मनुष्य के अस्तित्व की व्याख्या की जाय तो उसमें भी विस्तार नहीं है। यह बात अवश्य है कि मानव अस्तित्व संसार के विस्तार में अवस्थित है।

मनुष्य का प्रामाणिक अस्तित्व अकेलेपन में नहीं बरन् अन्य वस्तुओं और मनुष्यों के संसर्ग में ही है। यदि पूछा जाय कि डायेन 'कीन' है, तो स्पष्ट रूप से उत्तर होना 'में'। यह 'में' संसार से स्वतन्त्र या अलग रहकर प्रामाणिक डायेन नहीं हो सकता है। प्रामाणिक डायेन में 'नित्यता' (everydayness) होती है। वह एक अकेला व्यक्ति नहीं होता है। वह तो 'सब के समान एक' (one like many) मनुष्य होता है। तात्पर्य यह है कि मनुष्य की वैयक्तिक विशेषताओं को हटाकर जो अन्य मनुष्यों की भाँति सामान्य गुण होते हैं उनसे विभूषित व्यक्ति अन्य वस्तुओं और मनुष्यों से सक्रिय सम्बन्ध में ही प्रामाणिक अस्तित्ववान मनुष्य कहा जा सकता है।

यात्क ओर अपने

इस प्रकार हम देखते हैं कि मानव अस्तित्व के दो पक्ष हैं— एक तो अज्ञान में और दूसरा सामाजिक। हेडेगर मनुष्य के सामाजिक पक्ष को प्रामाणिक अस्तित्व मानता है। अतः हम हेडेगर को सामाजिक अस्तित्ववादी नहीं कह सकते हैं। मनुष्य के वैयक्तिक अस्तित्व के तीन रूपों का उल्लेख हम ऊपर कर आये हैं। उसके दूसरे पक्ष को, जिसे हेडेगर डायेन की 'नित्यता' कहता है, इसी प्रकार कई रूपों में समझा जाता है। मनुष्य के इस नित्य अस्तित्व को हेडेगर अधिक महत्व देता है। वह कहता है कि इसके तीन रूप प्रधान हैं। (अ) वार्ता (chatter) उसका प्रथम रूप है। मनुष्य का दूसरे लोगों से विचार सञ्चारण (Communication) होता है। वह दूसरों से अपने भाव व्यक्त करता है। यहाँ कथ्य-विषय का महत्व नहीं होता बल्कि रूढ़िवादी परम्परा वाली वार्ता ही महत्व रखती है। सुनने वाला केवल कथन पर ध्यान देता है और कथ्य-विषय की उपेक्षा करता है। इसकी बात ठीक से नहीं समझना चाहता। केवल ऊपरी बातों को परम्परागत विधि से सुनता है। (ब) नित्य मानव अस्तित्व का दूसरा रूप जिज्ञासा (curiosity) है। इसका सम्बन्ध दृष्टि से है। मनुष्य संसार की वस्तुओं को देखता है। संसार की वस्तुओं के सम्पर्क में अपने पर उन वस्तुओं को देखना उसके लिए स्वाभाविक है। यह जिज्ञासा वस्तु को गहराई से समझने की नहीं होती है। कोई भी नई वस्तु मनुष्य को अपनी ओर आकर्षित करती है। वस्तु की नवीनता ही मनुष्य में जिज्ञासा उत्पन्न कर देती है। परिणामस्वरूप मनुष्य केवल यह देखना चाहता है कि वस्तु कैसी लगती है। (स) अनिर्दिष्टता (Ambiguity) नित्य मानव अस्तित्व का तीसरा रूप है। वह संसार में जो कुछ समझता है अनिर्दिष्ट ही रहता है। उसके सामने जो तथ्य प्रकट होते हैं उनसे वह निश्चित नहीं कर पाता है कि उनका ज्ञान उसे यथार्थ हुआ है या नहीं।

संसार में पड़े (Verfallen) मानव अस्तित्व की एक और महत्वपूर्ण विशेषता है। उसका सम्बन्ध उस संसार से है जिसके पीछे परमसत् विद्यमान है। संसार परमसत् की एक सम्भावना है। इसलिए मनुष्य का सम्बन्ध परमसत् के साथ संसार से भी है। हेडेगर यहाँ परमसत् को चिन्ता (Care) कहता है। चिन्ता के तात्पर्य को समझने के लिए 'वास' की उद्भावना समझना आवश्यक है। आधुनिक युग में अस्तित्ववाद का उद्घाटन करने वाले दार्शनिक किर्कोगार्ड ने भी 'वास' की व्याख्या की थी। किर्कोगार्ड और हेडेगर दोनों 'भय' और 'वास' में अन्तर मानते हैं। 'भय' सदा किसी विशेष वस्तु का भय होता है। किन्तु वास किसी निश्चित वस्तु का नहीं होता है। न-कुछ ही ऐसा कुछ है जिससे वास उत्पन्न होता है। मनुष्य को जिससे वास होता है वह वस्तु किसी विशेष स्थान में नहीं